मधु-रस

[चुने हुए पौराणिक खण्ड-काव्य]



रचयिता

श्री भगवत् स्वरूप जैन 'भगवत्'

: मूल्य :

छह आना

प्रकाशक
श्री भगवत्-भवन,
ऐत्मादपुर (आगरा)

प्रथम बार

इन तुकबन्दियों के विषय मे कुछ कहने की इच्छा होती है। पर, यह सोचकर मौन अधिक उचित जान पड़ता है कि यदि ये रचनाएँ सुन्दर हैं, तो मेरे कहने की ज़रूरत क्या रह जाती है? और यदि असुन्दर हैं तो मै किसी भी तरह आपके पारखी-हृदय को ठग नही सकता।

शेष रहती है अपनी बात, और मुझे अपने बारे मे यह प्रगट करने मे ज़रा भी हिचक नहीं है कि मै 'कवि' नहीं हूँ। जो पंक्तियाँ लिखी हैं शायद वे 'कविता' इसलिए न कहला सकें। पर, यदि आपका इनसे कुछ मनोरञ्जन होता है तो वह मेरे लिए ख़ुशी की चीज़ है। बस!

जून ४४ —स्नेही-'भगवत्'

सन १९४४

मुद्रक
गुलाबचन्द अग्रवाल, बी. कॉम.,
अग्रवाल प्रेस, आगरा।

स्वाधीनता की दिव्यज्योति

जिस वीरने हिंसाकी हुकूमत को मिटाया।
जिस वीरके अवतारने पाखण्ड नशाया ॥
जिस वीरने सोती हुई दुनियाको जगाया।
मानवको मानवीयताका पाठ पढ़ाया ॥
उस वीर, महावीरके क़दमोमें झुका सर।
जय बोलिएगा एक बार प्रेमसे प्रियवर!

कहता हूँ कहानी मै सुनन्दा के नन्दकी।
जिसने न कभी दिलमे ग़ुलामी पसन्द की ॥
नौबत भी आई भाईमें भाईके द्वन्दकी।
लेकिन न मोड़ा मुँह, न ज़ुबाँ अपनी बन्द की ॥
आज़ादी छोड़ जीना जिसे नागवार था।
बेशक स्वतंत्रतासे मुहब्बत थी, प्यार था ॥

थे 'बाहुबली' छोटे, 'भरतराज' बड़े थे।
छह-खण्डके वैभव सभी पैरोमे पड़े थे ॥
थे चक्रवर्ति, देवता सेवामे खड़े थे।
लेकिन थे वे भाई कि जो भाईसे लड़े थे ॥
भगवान ऋषभदेवके वे नौनिहाल थे।
सानी न था दोनो ही अनुज बे-मिसाल थे ॥

भगवान तो, दे राज्य, तपोवनको सिधारे।
करने थे उन्हे नष्ट-भ्रष्ट कर्मके आरे ॥
रहने लगे सुख-चैन से दोनों ही दुलारे।
थे अपने-अपने राज्य मे सन्तुष्ट बिचारे ॥

इतनेमे उठी क्रान्तिकी एक आग विषैली।
जो देखते ही देखते ब्रह्माण्डमे फैली॥

करनेके लिए दिग्विजय भरतेश चल पड़े।
क़दमोमे गिरे शत्रु, नहीं रह सके खड़े॥
थी ताब, यह किसकी कि जो चक्रीसे आ लड़े?
यो, आके मिले आप ही राजा बड़े-बड़े॥

फिर होगया छह-खण्डमे भरतेशका शासन।
पुजने लगा अमरोसे नरोत्तमका सिंहासन॥

था सबसे बड़ा पद जो हुकूमतका वो पाया।
था कौन बचा, जिसने नहीं सिर था झुकाया?
दल देव-व-दानवका जिसे पूजने आया।
फिरती थी छहो खण्डमे भरतेशकी छाया॥

यह सत्य हर तरह है कि मानव महान् था।
गो, था नहीं परमात्मा; पर, पुण्यवान था॥

जब लौटा राजधानीको चक्रीशका दल-बल।
जिस देशमे आया कि वहीं पड गई हल-चल॥
ले-लेके आए भेट—जवाहरात, फूल-फल।
नरनाथ लगे पूछने—भरतेशकी कुशल॥

स्वागत किया, सत्कार किया सबने मोद भर।
था गूँजता भरतेशकी जयघोषसे अम्बर॥

था कितना विभव साथमे, कितना था सैन्य-दल।
कैसे करूँ बयान, नहीं लेखनी मे बल॥
हाँ, इतना इशारा ही मगर काफी है केवल
सब-कुछ था मुहैया, जिसे कर सकता पुण्य-फल॥

सेवक करोड़ो साथ थे, लाखो थे ताजवर।
अगणित थे अस्त्र, शस्त्र; देख थर हरे कायर॥

उत्सव थे राजधानीके हर शख्सके घरमें ।
ख़ुशियाँ मनाई जा रही थीं ख़ूब नगरमें ॥
थे आ रहे चक्रीश, चक्ररत्न ले करमें ।
चर्चाएँ दिग्विजयकी थीं घर-घरमें डगरमें ॥
इतनेमें एक बाधा नई सामने आई ।
दम-भरके लिए सबको मुसीबतसी दिखाई ॥

जाने न लगा चक्र नगर द्वार के भीतर ।
सब कोई खड़े रह गए जैसे कि हो पत्थर ॥
सब रुक गईं सवारियाँ रास्तेको घेरकर ।
गोया थमा हो मंत्रकी ताकतसे समुन्दर ॥
चक्रीश लगे सोचने—'ये माजरा क्या है ?
है किसकी शरारत कि जो ये विघ्न हुआ है ?

क्योंकर नहीं जाता है चक्र अपने देशको ?
है टाल रहा किस लिये अपने प्रवेश को ?
आनन्दमें क्या घोल रहा है कलेश को ?
मिटना रहा है शेष, कहाँके नरेश को ?
बाकी बचा है कौन-सा इन छहों खण्डमें !
जो डूब रहा आजतक अपने घमण्डमें ॥'

जब मंत्रियोंने फ़िक्रमें चक्रीशको पाया ।
माथा झुकाके, सामने आ भेद बताया ॥
'बाहूबलीका गढ नहीं अधिकारमें आया ।
है उनने नहीं आके अभी शीश झुकाया ॥
जब तक न वे अधीनता स्वीकार करेंगे ।
तब तक प्रवेश देशमें हम कर न सकेंगे ॥'

क्षण-भर तो रहे मौन, फिर ये बैन उचारा ।—
'भेजो अभी आदेश उन्हे दूतके द्वारा ॥'

आदेश पा भरतेशका तब भृत्य सिधारा।
लेकरके चक्रवर्तिकी आज्ञाका कुठारा ॥
बाचाल था, विद्वान, चतुर था, प्रचण्ड था।
चक्रीके दूत होनेका उसको घमण्ड था ॥

बोला कि–'चक्रवर्तिको जा शीश झुकाओ।
या रखते हो कुछ दम तो फिर मैदानमे आओ।
मै कह रहा हूँ उसको शीघ्र ध्यानमे लाओ।
स्वामीकी शरण जाओ, या वीरत्व दिखाओ ॥'
सुनते रहे बाहूबली गंभीर हो बानी।
फिर कहने लगे दूतसे वे आत्म-कहानी ॥

'रे, दूत! अहंकारमे ख़ुदको न डुबा तू।
स्वामीकी विभव देखकर मत गर्वमे आ तू ॥
वाणीको और बुद्धिको कुछ होशमे ला तू।
इन्सानके जामेको न हैवान बना तू ॥
सेवककी नहीं जैसी कि स्वामीकी जिन्दगी।
क्या चीज है दुनियामे ग़ुलामीकी जिन्दगी ॥

स्वामीके इशारे पै जिसे नाचना पड़ता।
ताज्जुब है कि वह शख़्स भी, है कैसे अकड़ता?
मुर्दा हुई-सी रूहमे है जोश न दृढ़ता।
ठोकर भी खाके स्वामी के पैरोको पकड़ता ॥
वह आके अहंकारकी आवाजमे बोले।
अचरजकी बात है कि लाश पुतलियाँ खोले ॥'

सुनकर ये, राजदूतका चेहरा बिगड़ गया।
चुपचाप खड़ा रह गया, लज्जासे गड़ गया ॥
दिलमे ग़रूर मिट गया, पैरोंमे पड़ गया।
हैवानियतका डेरा ही गोया उखड़ गया ॥

पर, बाहूबली राजका कहना रहा जारी।
वह यो, जवाब देनेकी उनकी ही थी बारी॥

बोले कि—'चक्रवर्तिसे कह देना ये जाकर।
बाहूबली न अपना झुकाएँगे कभी सर॥
मैं भी तो लाल उनका हूँ हा जिनके तुम पिसर।
दोनों को दिए थे उन्होने राज्य बराबर॥
सन्तोष नही तुमको ये अफसोस है मुझको।
देखो, जरासे राज्य पै सन्तोष है मुझको॥

अब मेरे राज्यपर भी है क्यों दाँत तुम्हारा।
क्यो अपने बड़प्पनका चलाते हो कुठारा?
मैं तुच्छ-सा राजा हूँ, अनुज हूँ मै तुम्हारा।
दिखलाइयेगा मुझको न वैभवका नजारा॥
नारीकी तरह होती है राजाकी सल्तनत।
यो, बन्धुकी गृहणी पै न बद कीजिए नीयत॥

छोटा हूँ, मगर स्वाभिमान मुझमे कम नहीं।
बलिदानका बल है, अगर लड़नेका दम नहीं॥
'स्वातंत्र्य' के हित प्राण भी जाएँ तो ग़म नहीं।
लेकिन तुम्हारा दिल है वह जिसमे रहम नहीं॥
कह देना चक्रधरसे झुकेगा ये सर नहीं।
बाहूबलीके दिलपै ज़रा भी असर नही॥

बेचूँगा न आजादी को, लेकर मै ग़ुलामी।
भाई है बराबर के, हो क्यो सेवको स्वामी?
मत डालिये इच्छा है यही प्यारमे खामी।
आऊँगा नहीं जीते-जी देनेको सलामी॥'
सुन करके वचन, राज-दूत लौटके आया।
भरतशको आकरके सभी हाल सुनाया॥

चुप सुनते रहे जब तलक, काबू मे रहा दिल।
पर, देर तक खामोशीका रखना हुआ मुश्किल॥
फिर बोले जरा जोरसे, हो क्रोधमें ग़ाफ़िल।
'मरनेके लिये आयेगा, क्या मेरे मुक़ाबिल?
छोटा है, मगर उसको बड़ा-सा गरूर है।
मुझको घमण्ड उसका मिटाना ज़रूर है॥'

फिर क्या था, समर-भूमिमें बजने लगे बाजे।
हथियार उठाने लगे नृप थे जो विराजे॥
घोड़े भी लगे हींसने, गजराज भी गाजे।
कायर थे, छिपा आँख वे रण-भूमिसे भाजे॥
सुभटोंने किया दूर जब इन्सानका जामा।
घनघोर-से संग्रामका तब सज गया सामाँ॥

दोनों ही पक्ष आगये, आकर अनी भिड़ी।
सबको यक़ीन यह था कि दोनोमे अब छिड़ी॥
इतनेमे एक बात वहाँ ऐसी सुन पडी।
जिसने कि युद्ध-क्षेत्रमे फैलादी गड़बडी॥
हाथोमे उठे रह गये जो शस्त्र उठे थे।
मुँह रह गए वे मौन, जो कहनेको खुले थे॥

ये सुन पड़ा—न वीरोंके अब खून बहेंगे।
भरतेश व बाहूबली ख़ुद आके लड़ेंगे॥
दोनो ही युद्ध करके स्व बल आजमालेंगे।
हारेंगे वही विश्वकी नज़रोमे गिरेंगे॥
दोनों ही बली, दोनो ही है चरम-शरीरी।
धारण करेंगे बादको दोनों ही फकीरी॥

क्या फ़ायदा है व्यर्थमें जो फौज कटाएँ?
बेकार गरीबोंका यहाँ ख़ून बहाएँ?

दोजखका सीन किसलिए हम सामने लाएँ ?
क्यो नारियोंको व्यर्थमे विधवाएँ बनाएँ ?
दोनोके मन्त्रियोने इसे तय किया मिलकर।
फिर दोनो नरेशोंने दी स्वीकारता इसपर ॥

तब युद्ध तीन क़िस्मके होते हैं मुक़र्रर।
जल-युद्ध, मल्ल-युद्ध, दृष्टि-युद्ध, भयंकर ॥
फिर देर थी क्या ? लड़ने लगे दोनो बिरादर।
दर्शक हैं खड़े देखते इकटक किये नजर ॥
कितना ये दर्दनाक है दुनियाका रवैया।
लड़ता है ज़र-जमीको यहाँ भैयासे भैया ॥

अचरजमे सभी डूबे जब ये सामने आया।
जल-युद्धमे चक्रीको बाहूबलिने हराया ॥
झुँझला उठे भरतेश कि अपमान था पाया।
था सब्र, कि है जंग अभी और बक़ाया ॥
'इस जीतमे बाहूबलीके क़दकी ऊँचाई।—
लोगोंने कहा—'ख़ूब ही वह काममे आई !!'

भरतेशके छींटे सभी लगते थे गले पर।
बाहूबलीके पडते थे जा आँख के अन्दर ॥
दुखने लगी आँखें, कि लगा जैसे हो खंजर।
आखिर यो, हार माननी ही पड गई थककर ॥
ढाईसौ-धनुष-दूगनी थी चक्रीशकी काया।
लघु-भ्रातकी पच्चीस अधिक, भाग्यकी माया ॥

फिर दृष्टि-युद्ध, दूसरा भी सामने आया।
अचरज, कि चक्रवर्ति को इसमे भी हराया ॥
लघु-भ्रातको इसमे भी सहायक हुई काया।
सब दंग हुए देख ये अनहोनी-सी माया ॥

चक्रीशको पडती थी नजर अपनी उठानी।
पड़ती थी जबकि दृष्टि बाहुबलिको झुकानी॥

गर्दन भी थकी, थक गए जब आँखके तारे।
लाचार हो कहना पड़ा भरतेशको—'हारे'॥
गुस्सेमे हुईं आँखें, धधकते-से अँगारे।
पर, दिलमे बड़े जोरसे चलने लगे आरे॥
तन करके रोम-रोम खड़ा होगया तनका।
मुँहपर भी झलकने लगा जो क्रोध था मनका॥

सब काँप उठे क्रोध जो चक्रीशका देखा।
चेहरे पै उभर आई थी अपमानकी रेखा॥
सब कहने लगे—'अबके बदल जायगा लेखा।
रहनेका नहीं चक्रीके मन, जयका परेखा॥'
चक्रीशके मनमे था—'विजय अबके मैं लूँगा।
आते ही अखाड़े, उसे मद-हीन करूँगा॥'

वह वक्त भी फिर आ ही गया भीड़के आगे।
दोनों ही सुभट लड़ने लगे क्रोधमे पागे॥
हम भाग्यवान् इनको कहे, या कि अभागे?
आपसमे लड़ रहे जो खड़े प्रेमको त्यागे॥
होती रही कुछ देर घमासान लड़ाई।
भर-पूर दाव पेचमे थे दोनों ही भाई॥

दर्शक थे दंग—देख विकट युद्ध—थे थरथर।
देवोंसे घिर रहा था समर-भूमिका अम्बर॥
नीचे था युद्ध हो रहा दोनोमे परस्पर।
बाहूबली नीचे कभी ऊपर थे चक्रधर॥
फिर देखते ही देखते ये दृश्य दिखाया।
बाहूबलीने भरतको कन्धे पै उठाया॥

यह पास था कि चक्रीको धरती पै पटक दें।
अपनी विजयसे विश्वकी सीमाओंको ढक दें॥
रण-थलमें बाहु-बलसे विरोधीको झटक दें।
भूले नहीं जो जिन्दगी भर ऐसा सबक़ दें॥
पर, मनमें सौम्यताकी सही बात ये आई।—
'आखिर तो पूज्य है कि पितासम बड़े भाई॥'

उस ओर भरतराजका मन क्रोधमें पागा।
'प्राणान्त करदूँ भाईका' यह भाव था जागा॥
अपमानकी ज्वालामें मनुज-धर्म भी त्यागा।
फिर चक्र चलाकर किया सोनेमें सुहागा॥
वह चक्र जिसके बल पै छहों खण्ड झुके थे।
अमरेश तक भी हार जिससे मान चुके थे॥

कन्धेसे ही उस चक्रको चक्रीने चलाया।
सुर-नरने तभी 'आह'से आकाश गुँजाया॥
सब सोच उठे—'दैवके मन क्या है समाया?'
पर, चक्रने भाईका नहीं .खून बहाया॥
वह सौम्य हुआ, छोड़ बनावटकी निठुरता।
देने लगा प्रदक्षिणा, धर मनमें नम्रता॥

फिर चक्र लौट हाथमें चक्रीशके आया।
सन्तोष-सा, हर शख्शके चेहरे पै दिखाया॥
श्रद्धासे बाहुबलिको सबने भाल झुकाया।
फिर काल-चक्र दृश्य नया सामने लाया॥—
भरतेशको रण-भूमिमें धीरे-से उतारा।
तत्काल बहाने लगे फिर दूसरी धारा॥—

'धिक्कार है दुनिया कि है दमभरका तमाशा।
भटकाता, भ्रमाता है पुण्य-पापका पाशा॥

कर सकते वफादारीकी हम किस तरह आशा।
है भाई जहाँ भाई हीके .खूनका प्यासा॥
चक्रीश! चक्र छोड़ते क्या यह था बिचारा?
मर जाएगा बे-मौत मेरा भाई दुलारा॥

भाईके प्राणसे भी अधिक राज्य है प्यारा।
दिखला दिया तुमने इसे, निज कृत्यके द्वारा॥
तीनों ही युद्धमें हुआ अपमान तुम्हारा।
जब हार गये, न्यायसे हट चक्र भी मारा॥
देवोपुनीत-शस्त्र न करते है वंश-घात।
भूले इसे भी, आगया जब दिलमे पक्षपात॥

मैं बच गया पर तुमने नहीं छोडी कसर थी।
सोचो, जरा भी दिलमें मुहब्बतकी लहर थी?
दिलमें था जहर, आगके मानिंद नजर थी।
थे चाहते कि जल्द बँधे भाईकी अरथी॥
अन्धा किया है तुमको, परिग्रहकी चॉहने।
सब-कुछ भुला दिया है गुनाहोंकी छाँहने॥

सोचो तो, बना रह सका किसका घमण्ड है?
जिसने किया, उसीका हुआ खण्ड-खण्ड है॥
अपमान, अहंकारकी चेष्टाका दण्ड है।
क़िस्मतका बदा, बल सभी बलमें प्रचण्ड है॥
है राज्यकी ख्वाहिश तुम्हे लो राज्य सँभालो।
गद्दी पै विराजे इसे .कदमोंमे झुकालो॥

उस राज्यको धिक्कार कि जो मदमें डुबा दे।
अन्याय और न्यायका सब भेद भुला दे॥
भाईकी मुहब्बतको भी मिट्टीमें मिला दे।
या यो कहो—इन्सानको हैवान बना दे॥

दरकार नही ऐसे घृणित-राज्यकी मनको।
मै छोड़ता हूँ आजसे इस नारकीपनको ॥'
यह कहके चले बाहुबली मुक्तिके पथपर।
सब देखते रहे कि हुए हो सभी पत्थर॥
भरतेशके भीतर था व्यथाओंका बवण्डर।
स्वर मौन था, अटल थे, कि धरती पै थी नज़र॥
आँखोंमे आगया था दुखी-प्राणका पानी।
या देख रहे थे खड़े वैभवकी कहानी॥

+ × +

[उपसंहार]

जाकरके बाहुबलिने तपोवनमे जो किया।
उस कृत्यने संसार सभी दंग कर दिया॥
तप व्रत किया कि नाम जहाँमे कमा लिया।
कहते है तपस्या किसे, इसको दिखा दिया॥
कायोत्सर्ग वर्ष-भर अविचल खड़े रहे।
ध्यानस्थ इस क़दर रहे कवि किस तरह कहे?
मिट्टी जमी शरीरमे सटकर, इधर-उधर।
फिर दूब उगी, बेल बढ़ी बाँहों पै चढ़कर॥
बाँबी बनाके रहने लगे मौजसे फनधर।
मृग भी खुजाने खाज लगे ठूँठ जानकर॥
निस्पृह हुए शरीरसे वे आत्म-ध्यानमें।
चर्चाका विषय बन गये सारे जहानमे॥
पर, शल्य रही इतनी गोमटेशके भीतर।
'ये पैर टिके हैं मेरे चक्रीकी भूमि पर॥
इसने ही रोक रक्खा था कैवल्यका दिनकर।
वरनः वो तपस्या थी तभी जाते पाप झर॥

यह बात बढ़ी और सभी देश मे छाई।
इतनी कि चक्रवर्तिके कानोंमें भी आई॥
सुन, दौड़े हुए आये भक्ति-भावसे भरकर।
फिर बोले मधुर-बैन ये चरणोमे झुका सर॥
'योगीश! उसे छोड़िये जो द्वन्द है भीतर।
हो जाय प्रकट जिससे शीघ्र आत्म-दिवाकर॥
हो धन्य, पुण्यमूर्ति! कि तुम हो तपेश्वरी।
प्रभु! कर सका है कौन तुम्हारी बराबरी?
मुझसे अनेकों चक्री हुए, होते रहेगे।
यह सच है कि सब अपनी इसे भूमि कहेगे॥
पर, आप सचाईपै अगर ध्यानको देंगे।
तो चक्रधरकी भूमि कभी कह न सकेंगे॥
मैं क्या हूँ?–तुच्छ! भूमि कहाँ? यह तो विचारो।
काँटा निकाल दिलसे अकल्याणको मारो॥'
चक्रीने नभी भालको धरतीसे लगाया।
पद-रजको उठा भक्तिसे मस्तकपै चढ़ाया॥
गोया ये तपस्याका ही सामर्थ्य दिखाया।—
पुजना जो चाहता था वही पूजने आया॥
फिर क्या था, मनका द्वन्द सभी दूर होगया।
अपनी ही दिव्य-ज्योतिसे भरपूर होगया॥
कैवल्य मिला, देवता मिल पूजने आए।
नर-नारियोंने ख़ूब ही आनन्द मनाए॥
चक्री भी अन्तरंगमे फूले न समाए।
भाईकी आत्म जयपै अश्रु आँखमें आए॥
है वन्दनीय, जिसने ग़ुलामी समाप्त की।
मिलनी जो चाहिए, वही आज़ादी प्राप्त की॥

\+ \+ \+

उन गोमटेश प्रभुके सौम्य-रूपकी झाँकी ।
वर्षों हुए कि विज्ञ-शिल्पकारने आँकी ॥
कितनी है कलापूर्ण, विशद्, पुण्यकी झाँकी ।
दिल सोचने लगता है, चूमूँ हाथ या टाँकी ?

है श्रवण बेलगोलमें वह आज भी सुस्थित ।
जिसको विदेशी देखके होते हैं चकितचित ॥

कहते हैं उसे विश्वका वे आठवाँ अचरज ।
खिल उठता जिसे देख अन्तरंगका पंकज ॥
झुकते हैं और लेते हैं श्रद्धासे चरण-रज ।
ले जाते हैं विदेश उनके अक्सका कागज ॥

वह धन्य, जिसने दर्शनोंका लाभ उठाया ।
बेशक सफल हुई है उसी भक्तकी काया ।

उस मूर्तिसे है शान कि शोभा है हमारी ।
गौरव है हमें, हम कि हैं उस प्रभुके पुजारी ॥
जिसने कि गुलामीकी बला सिरसे उतारी ।
स्वाधीनताके युद्धकी था जो कि चिगारी ॥

आजादी सिखाती है गोमटेशकी गाथा ।
झुकता है अनायास भक्ति-भावसे माथा ॥

\+ + +

'भगवत्' उन्हीं-सा शौर्य हो, साहस हो, सुबल हो ।
जिससे कि मुक्ति-लाभ लें, नर-जन्म सफल हो ॥

स्वयंवरा

बनवास के दिन थे कि मुसीबत का वक्त था !
लक्ष्मण भी साथ में था जो भाई का भक्त था !!
सीता थी, हृदय जिसका पती-प्रेमासक्त था !
तीनो मे भरा गोया मुहब्बत का रक्त था !!
थे खुश, न परेशानी का मुँह पर निशान था !
यह इसलिए ही था कि भरा दिल मे ज्ञान था !!
खाते थे सभी, प्रेम सहित तोड़ के वन-फल ।
झरनो से अपनी प्यास बुझाते थे लेके जल ।।
सोते थे बीहड़ो मे, बिछा भूमि पै कम्बल ।
चलते थे क्रीड़ा करते हुए बा-ख़ुशी पैदल ।।
कर्मों की कुटिलता की थी ये क्रूर-कहानी ।
वन-वन मे जो रही थी भटक रामकी रानी ।।
सीता थी, जिसे स्वामी की सेवा का चाव था ।
सोते हुए भी जागता राघव का ख्वाब था ।।
रघुवर का हृदय सौम्यता मे ला-जवाब था ।
लक्ष्मण था चपल, कौतुकी उसका स्वभाव था ।।
आनन्द-मग्न, दिल मे अभय ले के बिचरते ।
आए ये 'खेमाँजल' के निकट घूमते-फिरते ।।
जब बैठे, मिटा भोजनो से भूख के ज्वर को ।
लक्ष्मण ने कहा-'भैय्या !'-झुका पाँवो मे सरको।।
तब बोले राम-'क्या है ?' उठा अपनी नजर को।
बोला कि—'हुक्म हो तो देख आऊँ नगर को ।।'
आदेश राघवेन्द्र ने देकर विदा किया ।
वह धीर वीर 'पुर' के तभी पथ पै चल दिया ।।

डग धरते हुए जैसे हो धरती को कँपाता।
पुर-जन ने उसे देखा यो बाजार मे आता॥
सब देख उठे, छोड़ के धन्धे की असाता।
यह योंकि वीर-वेष जो था मनको लुभाता॥
आपस मे लगे कहने—'भद्र-रूप है कैसा ?—
आँखों ने नही आज तलक देखा था ऐसा !'

कुछ कहने लगे—'राज्य का सम्वाद है पाया।
शक्ती की इसलिए ही चोट झेलने आया॥
लगता है वीर बाँका कि मजबूत है काया।
इस पर भी मात खाए तो भगवान की माया !!'
लक्ष्मण को सुन पड़ी जो अधूरी-सी ये कथा।
आगे न बढ़ सका कि जगी मन मे कुछ व्यथा॥

बोला कि—'भाई ! मुझ को कहो माजरा क्या है ?
शक्ती की चोट झेलने को किसने कहा है ?'
उनमे से एक बोला—'क्या तुमको न पता है ?—
इस राजदुलारी की तो मशहूर कथा है !
है 'शत्रुदमन' राजा शक्ति-शौर्य के धारी।
'जितपद्मा' उन्ही की है एक राजकुमारी॥

सौन्दर्य की प्रतिमा है गुणो से हरी भरी !
भ्रम होता देखते ही, नरी है या किन्नरी ?
कमला व कमल दोनों की जिसने प्रभा हरी।
बस, दिल मे समझिए कि है अत्यन्त-सुन्दरी !!
अपने अनूप रूप का उसको घमण्ड है।
यह और भी यों है कि पिता भी प्रचण्ड है॥

पुरुषो से घृणा है कि नाम तक नहीं भाता।
'पुल्लिग-शब्द' कोई वहाँ कह नही पाता॥

इतनी है कड़ाई कि कहा कुछ नहीं जाता ।
'लोटा' भी उसके सामने 'लुटिया' है कहाता ॥'
सुनता रहा रघुवीर-अनुज, मुँह नहीं खोला ।
चुप रह के नानिक कहने वाला आपही बोला । –
'महाराज की ये घोषणा दुनिया में है जाहिर ।
गोया ये की है वर के लिए मौत मुकर्रिर ॥
जो मेरी शक्ति-चोट को सहलेगा वीर-नर ।
जितपद्मा कुमारी का वही हो सकेगा वर ॥
महाराज की शक्ती से भला कौन बचेगा ?
वह मूर्ख ही होगा जो प्राण इस तरह देगा ॥
कन्या की बात क्या है स्वर्ग-राज्य भी पाए ।
स्वीकार किसे होगा कि जो प्राण गँवाए ?
प्राणों से मूल्यवान क्या है, कोई बताए ?
जब प्राण ही गए तो कोई आए या जाए ?
कन्या मे गोया मृत्युका इतिहास लिखा है ।
नादान-पतंगो के लिए दीप-शिखा है ॥
है किसको मोह मौत से, जो आग को चाहे ?
है कौन जो राजा की कुटिलता को सराहे ?
सामर्थ है किसमें कि जो शक्ती को निभाहे ?
है कौन भाग्यवान जो कन्या को विवाहे ?'
सुन करके सुमित्रा का नन्द कह उठा मन मे ।—
'है कितनी अकर्मण्यता इस नर के वचन मे ॥—
वह क्या है पुरुष जोकि है पुरुषत्व से रीता ।
निज बल के परखने का भी जिसको न सुभीता ॥
कमज़ोरियो मे ज़िन्दगी का वक्त ही बीता ।
जीवन का समर जिससे नहीं जा सका जीता ॥'

फिर मुस्करा के कहने लगा, राम का भाई !—
'हे भद्र ! बात आपने ये ख़ूब सुनाई !!'

फिर आगे बढ़ा, छोड़ नगर-वासियों का दल ।
मन में था समाया हुआ इस वक्त कुतूहल ।।—
'देखूँ है कैसी कन्या, जो दुनिया को अमंगल ।
रखते है प्रजापाल भी शक्ती का कितना बल ?'

पहले तो सुन के मन मे जगा क्रोध-सा आया ।
पर, देखने की लालसा ने उसको दबाया ॥

फिर क्या था, अपने आप दोनों बढ़ने लगे पग ।
मन का इशारा पा के पकड़ बैठे राज-मग ॥
रह सकते कहाँ पग थे मन के हुक्म से अलग ?
उत्सुक था क्योंकि देखने को जिस्म का रग-रग ॥

देखे गगन को छूते-से, वैभव-भरे महल ।
सुन्दर थे सुर-विमान-से, थे पुण्य-से उज्वल ॥

आया प्रवेश-द्वार सुमित्रा का दुलारा ।
बोला—'है देखना मुझे शक्ती का नजारा ॥'
प्रहरी ने कहा—'भद्र ! क्या परिचय है तुम्हारा ?'
'सेवक हूँ भरत का मै !'—ये लक्ष्मण ने उचारा ॥

गंभीर गिरा, वीर-वेश, इन्द्र-सी काया ।
प्रहरी ने देख पाई तो सिर अपना झुकाया ॥

आज्ञा ले महीपति की भृत्य ले चला भीतर ।
बैठे थे नृपति, योद्धा तथा दूसरे अफसर ॥
दर्बार में, वीरत्व का फैला था समुन्दर ।
लेकिन नही लक्ष्मण ने झुकाया किसी को सर ॥

बोला वो निडर होके गरजते हुए स्वर मे ।
आया हो गोया शेर-बबर स्याल के घर मे ॥

'कह तो कहाँ है तेरी अधम राजकुमारी ?
उद्यत है अहकार की लेकर जो कटारी ॥
कन्या है, काल-कन्या है कि काल की आरी ?
गौ है वो मरखनी, कि है पाषाण की नारी ?'
आए थे तब तो मुग्ध हुए थे सभा के जन।
अब काँप उठे मन, जो सुने वज्र-से वचन ॥

महाराज के मन मे भी विषैला-विकार था।
वह खत्म हो चुका था कि आया जो प्यार था ॥
आदीथे, यो सन्मान को दिल बेक़रार था।
लक्ष्मण प्रणाम-हीन था, यह नागवार था ॥
खामोश थे अपने मे, नही लब था हिलाया।
अब रह सकें खामोश, ये मुश्किल-सा दिखाया ॥

जलने लगी थी मन में कुटिल-क्रोध की ज्वाला।
मुँह सुर्ख था. आँखें हुई थी रक्त का प्याला ॥
कुछ मौन रहे, क्योकि था आवेश का ताला।
फिर क्रोध ने ललकार के वाणी को निकाला ॥
बोले कि—'कहो, कौन हो ? आए हो क्यो यहाँ ?
मैं चाहता हूँ जानना रहते हो तुम कहाँ ?'

लक्ष्मण का तभी गूँजा वहाँ फिर से कण्ठ-स्वर।
'मै हूँ प्रताप शाली भरत-राज का अनुचर ॥
दुनियाँ की सैर करने को निकला हूँ छोड़ घर।
यों घूमते-फिरते हुए आया हूँ यहाँ पर ॥
आकर सुनी यहाँ, तेरी कन्या की कहानी।
पाकर पिता के बल को हुई है जो दिवानी ॥

है देखना मुझको दिखा शक्ती का नजारा।
सुन लोग जिसके नाम को करते हैं किनारा ॥

कन्या के अहंकार का है जिसको सहारा।
बैठा जो बहाने किसी के .खून की धारा॥'
वाणी को दे विश्राम थे बैठे हुए भूपाल।
गो, जल रहा था दिल कि थीं आँखें भी लाल-लाल॥

अब बोले, तड़प करके रंग क्रोध जो लाया।
'नादान! क्यों मरने के लिए सामने आया?
होकर उद्दण्ड, क्यों घमण्ड पर है लुभाया?
जा भाग, बचा करके जवानी-भरी काया॥'
लक्ष्मण को हँसी आई, हँसे ज़ोर से इस पर।
धरती-सी लगी काँपने, थर्रा गया अम्बर॥

सारी सभा मे उस समय आतंक छा गया।
गज-झुण्ड मे जैसे कि हो मृगराज आ गया॥
चेहरो का नूर सबका, एक दम बिला गया।
योद्धा था मगर फिर भी नृपति तिलमिला गया॥
जित पद्मा कुमारी भी झरोखे में आगई।
देखा जो सुमित्रा का नन्द, मुस्करा गई॥

मन जाने लगा हाथ मे, मर्याद से बाहर।
गोया थे निकल आए उसके मन में आज 'पर'॥
लक्ष्मण का रूप देख मुग्ध हो गया अन्तर।
आवेश से, आनन्द मे नीची हुई नज़र॥
मन का .गुरूर दूर था मनहूस अभागा।
या यों ही समझ लीजिए 'नारीत्व' था जागा॥

उस ओर कह रहा था अयोध्या का वीर वर।
'कर शीघ्र अपना वार तू क्यो हो रहा कायर?
जिन पर हो भरोसा वे शक्तियाँ तू ला जाकर।
क्या होगा एक शक्ती से मेरे शरीर पर?

खिलवाड़ देखना है तेरे बल का, वार का।
देना सुयोग है तुझे शक्ती-प्रहार का॥
बल तौल ले अपना कि रण की खाज मिटाले।
या अपने अहंकार को मिट्टी मे मिलाले॥
कन्या की दुष्टता को मिष्टता मे डुबाले।
मर्याद से बाहर के वचन बोलने वाले!'
वैरीदमन ने क्रोध मे भर शक्ति उठाई।
लक्ष्मण को तभी-'ओह!'-की आवाज-सी आई॥
'क्या है?' ये देखने के लिए भाल उठाया।
कन्या को झरोखे मे था बैठे हुए पाया॥
आँखो मे मुहब्बत थी कि भयभीत थी काया।
लक्ष्मण भी हुआ मुग्ध, धन्य! प्रेम की माया!
करती थी यो संकेत वो पर्दे की ओट मे।
'प्राणेश! अलग हूजिए शक्ती की चोट से॥
गर आपका शक्ती से हुआ कुछ भी अमंगल।
तो जिन्दगी हो जाएगी मेरी सभी निष्फल॥'
लक्ष्मण ने इशारे मे कहा—'प्रेम की पागल!
घबराओ न, रखता हूँ मै भरपूर आयु-बल!!'
फिर देखा, प्रजापाल ने शक्ती को है ताना।
है साध रहा साधना से दिल का निशाना॥
तब बोला लखन—'व्यर्थ ही क्यो देर लगाता?
क्या 'शक्ति वाण' तक नही है मारना आता?
कंजूस के पैसे की तरह कर मे दबाता।
उस पर ये गर्व है कि—है वीरत्व से नाता॥'
फिर क्या था शक्ति खींच के भूपाल ने मारी।
'उफ़्!' करके उधर गिरने लगी राज दुलारी॥

लेकिन ये देखकर के दंग रह गए सब जन।
लक्ष्मण खड़ा है और बदस्तूर है जीवन॥
जिन पक्षा ने देखा तो बढ़ा उसके मोद मन।
पर, हो रहा था बाप का चेष्टा-विहीन तन॥
जिस पर घमण्ड था वो बात खोखली निकली।
लक्ष्मण ने दाँये-हाथ मे शक्ती थी पकड़ ली॥

वह कह रहा था—'एक ही शक्ती को मार कर।
ओ, मूढ़ अहंकारी! बता क्यों रहा ठहर?
ला और भी, रखता है जो शक्ती का बल अगर।
वर्ना तू वीर की जगह कहलाएगा कायर॥'
भूले नरेश था कि जो फर्मान निकाला।
कब सोचता क़ानून को है मारने वाला॥

वह आप ही अपमान की ज्वाला में पड़े थे।
कुछ क्रोध का बल था कि जो पैरो से खड़े थे॥
गो, शर्मदार थे न बल्कि चिकने-घड़े थे।
शक्ती को मार कर भी जो लड़ने को खड़े थे॥
फिर क्या था दूसरी भी शक्ती तान के छोड़ी।
सीमा जो न्याय की थी वो अन्याय से तोड़ी॥

अचरज कि अब की बार भी वह दृश्य ही दीखा।
पर, उससे प्रजापाल ने कुछ पाठ न सीखा॥
थामा था बाँये-हाथ मे वह अस्त्र भी तीखा।
यह देखके अन्यायी का मन और भी चीखा॥
लक्ष्मण ने कहा—'और भी तीखे प्रहार कर।
रह जाए नही दिल के कोई हौंसला अन्दर॥'

फिर तीसरी, चौथी भी चोट कर गया क़ातिल!
अपमान से पागल की तरह रो रहा था दिल॥

घबरा रहे थे और जोश होश थे गाफ़िल।
वह सोच रहे थे कि–'फ़तह पाना है मुश्किल॥'
लक्ष्मण ने शक्तियाँ दोनो काँखो में दबालीं।
यह इसलिए कि मुट्ठियाँ उसकी न थी खाली॥
उन चार शक्तियो को वो थामे था इस तरह।
चौदन्ता गज खड़ा हो धीर-वीर भयावह॥
सब सोच रहे थे हृदय मे बात ये रह-रह।—
'नर है कि असुर है ये शक्ति-शौर्य का संग्रह ?'
ललकार के लक्ष्मण ने कहा तामसी स्वर मे।
'ला और भी वे तीक्ष्ण-शक्तियाँ जो हो घर मे।'
जित पद्मा जो कठोर थी वो आज थी कोमल।
भय उसको अमंगल के ने कर रक्खा था चंचल॥
मुश्किल से काट पा रही थी विह्वला पल-पल।
यह सोच रही थी कि 'न हो स्वामी की अकुशल!'
फिर पाँचवीं शक्ती का लखन पर प्रहार था।
जो सबसे ख़तरनाक़ और दुर्निवार था॥
पर, देखने में दृश्य वही सामने आया।
लक्ष्मण ने 'शक्ति-बाण' का दाँतो से दबाया॥
बैरीदमन ने देखी—बदस्तूर है काया।
श्रद्धा से और प्रेम से तब भाल नवाया॥
'ला और!' जबकि भूप से कहने लगा लक्ष्मण।
अम्बर से बरसने लगे लक्ष्मण पै पुष्प-कण॥
'जयघोष' सब दिशाओ से देता था सुनाई।
आनन्द की मुस्कान-सी हर मुँह पै थी छाई॥
जित पद्मा नज़र डाले हुए सामने आई।
सौभाग्य था जीवन की पूर्णता थी जो पाई॥

लक्ष्मण भी हुआ सौम्य, मुहब्बत का रंग भर।
'भगवत्' यों हुआ राजकुमारी का स्वयंवर॥

सिद्धार्थ-नन्द

दुनिया में अगर वीर का अवतार न होता।
तो, रहमे-गुलिस्तान ये गुलज़ार न होता॥
इन्सान को, इन्सानियत से प्यार न होता।
गफ़लत से आत्मा भी ख़बरदार न होता॥
कुछ चेती बेगुनाहों की फूटी हुई तक़दीर!
आये जहाँ के सामने भगवान महावीर॥

छाया हुआ था विश्व में हिंसा का अँधेरा।
डाला था आत्मा पै क्रूर-कर्म ने घेरा॥
लगने लगा मानव को—'पाप, धर्म है मेरा।'
हर शाम सनी ख़ून से, हर दिन का सवेरा॥
आकाश बेगुनाओं की आहों से भर गया।
मानव का बुद्धिवाद था जानें किधर गया?

हिंसा में अहिंसा उसे पड़ती थी दिखाई।
मानव में इस क़दर थी नारकीयता छाई॥
गर्दन पै अहिंसा के छुरी उनने चलाई।
बाहर से पुरोहित थे जो अन्दर से कसाई॥
'हिंसा नहीं है यज्ञ में',—यह पाठ पढ़ाया।
यों अपनी समझदारी से, ना समझ बनाया।

'सुख की है अगर लालसा तो पुण्य कमाओ।
है 'पुण्य' यज्ञ-कर्म में, यह भूल न जाओ॥

नर लाओ, अश्व लाओ, या जो लासको लाओ।
दहका के होमकुण्ड को सामर्थ दिखाओ॥'
    दुनिया तो रही है, सदा से सुख की चाह में।
    रहती है जागते हुए भी, ख्वाबगाह में॥

फिर क्या था पुण्य-लोभ में जनता उमड़ पड़ी।
पण्डित पुरोहितों मे लगी बढ़ने हेकड़ी॥
यो जलने लगे बे-ज़ुबान जैसे कि लकड़ी।
थी धर्म समझ देखती दुनिया खड़ी खड़ी॥
    मंत्रो व कराहो से जगी, यज्ञ की शाला।
    मन ही न, धुएँ से हुआ आकाश भी काला॥

था धर्म भी खतरे मे, कि खतरे मे जान थी।
खामोश थी आवाज़, ज़ुबाँ बे ज़ुबान थी!!
हत्यारों, ख़ूनियों मे उसी नर की शान थी।
हिंसा के कर्म मे नहीं जिसको गिलान थी॥
    मानव मे नारकीयता की गन्ध थी आई।
    या कहिये मन मे पाप की स्याही थी समाई॥

थी डूबी हुई दुनिया घने अन्धकार मे।
जीवन गवाँ रही थी दुखो के दुलार मे॥
आलोक मिले, थी इसी के इन्तज़ार मे।
इतने मे एक ज्योति-सी जागी बिहार मे॥
    कुण्डलपुरी के वासियो मे छा गया आनन्द।
    पैदा हुआ सिद्धार्थ के महलो मे एक नन्द॥

गमग़ीन-सी दुनिया ने जो उस ओर निहारा।
बहने लगी आनन्द और प्रेम की धारा॥
इस सुख से अमर-लोक भी न रह सका न्यारा।
तृय लोक का प्यारा हुआ त्रिशला का दुलारा॥

वीरोपलब्धि विश्व को स्वर्गीय-शान्ति थी।
दुनिया के लिए एक जबर्दस्त क्रान्ति थी॥

वह मौन, रहे देखते हिंसा का नजारा।
थी बह रही पद-पद पै उष्ण-रक्त की धारा।
दुख देख के दुखियों का, चला दिल में कुठारा।
दुखियों ने उन्हें देखा तो रोकर यों पुकारा॥—
'रक्षा करो भगवान् दुहाई है दुहाई।
यह छल है, ज़हर देते हैं कहते हैं मिठाई॥

हम मूक हैं हैवान कि सिर पर है ग़ुलामी।
बदक़िस्मती ये साथ है—इन्सान है स्वामी॥
है अपने ओज-तेज से जो हो रहा नामी।
अन्याय पै आकर भी जो भरता नहीं हामी॥
छायी है जानें कैसी घटा दिल पै पनीली।
पर होती दिखाती नहीं है आत्मा गीली॥

कहते हैं—यज्ञ कुण्ड में जलता है कि जो चर।
मिलता है उसे सौख्य, स्वर्गलोक का सुन्दर॥
पाता है इर्द-गिर्द वो आनन्द का सागर।
जगता है वास्तव में उसी चर का—मुकद्दर॥
यदि सच है, तो खोता है क्यों ये सुनहरा अवसर।
क्यों होम नहीं देता अपने घर को मूर्ख नर!!

हम ख़ुश हैं उसी हाल में, है जैसे हाल में।
कब चाहा फर्क हमने अपनी चाल-ढाल में?
सुख दुख जो मिला सह लिया, अपनी ही खाल में।
लाए न शिकायत कभी अपने सवाल में।
फिर क्यों वे हमारे लिए हैं कष्ट उठाते?
क्यों जलते हुए प्राणियों को और जलाते?'

सुनकर ये बेज़ुबानों की दर्दीली दास्तान।
क्षणभर को रहे मौन अहिंसा के भासमान॥
करुणा का उठ रहा था अन्तरंग में तूफ़ान।
फिर बोले सान्त्व-स्वर मे तभी सर्वशक्तिमान्॥
'निर्भय रहो, मत क्षीण करो सोच में काया।'
यह कहके वरद्-हस्त को प्रभुवर ने उठाया॥

तब बेकसों में जैसे नए प्राण आ गए।
गोया वे मृत्यु-युद्ध में हों जीत पा गए॥
दिल उनके जो मुरझाए थे वे लहलहा गए।
सुख उनमे समाया कि वे सुख में समा गए॥
समझा कि गई दुख की निशा, आया सबेरा।
जैसे कि उखड़ने को हो अन्याय का डेरा॥

भगवान् महावीर ने वह शक्ति जगाई।
जिस बल के लिए मानवीय देह थी पाई॥
भोगो में नही आत्मा क्षण-भर को लुभाई।
यह तेज था कि वासना न सामने आई॥
यों बाल ब्रह्मचारी रहे, विश्व के त्राता।
फिर छोड़ दिया दिल से पूज्य प्रेम का नाता॥

ठुकरा के राज-कन्याएँ, ठुकरा के सिंहासन।
परिग्रह का बोझ छोड़ किया फूल-सा जीवन॥
सामर्थ से तन और दया मे भरा था मन।
थे चाहते निबलों के, न हो रक्त का शोषण॥
कुछ वर्ष बिता डाले मौन-साधना लेकर।
कल्याण के पथ पर हुए भगवान् अग्रसर॥

सन्देश दिया वह कि बही प्रेम की धारा।
था हाथ मे अव्यर्थ-अहिंसा का कुठारा॥

भगवान महावीर ने जो कुछ भी उचारा।
.खुद पहले उसे अपने ही जीवन में उतारा॥
जो कहना चाहते थे वो .खुद में था समाया
यह देख के श्रद्धा से भाल सबने झुकाया॥

तब वीर की वाणी ये लगी देने सुनाई।—
'.खुद जीओ और जीने दो हरएक को भाई!!
इन्सानियत ही तुमने नहीं दिल से मिटाई?
भ्रातृत्व-भावना के लिए खोदी है खाई॥
हिंसा है महापाप कि ये नीच-कर्म है।
यदि धर्म है कोई तो अहिंसा ही धर्म है॥

हरएक को निहारो दया की निगाह से।
जी अपना बहलाओ न ग़रीबों की आह से॥
.खूँरेज़ी पाप है डरो इसके गुनाह से।
तुलना न करो क़ब्र की आरामगाह से॥
हिंसा है धर्म तो अधर्म क्या है, बताओ।
पाखण्ड यहीं रोक दो, आगे न बढ़ाओ॥

सीने में अगर दिल है और दिल मे ज्ञान है।
तो सोचो सबमे एक बराबर ही जान है॥
सुख, सुख है और दुख भी सभी को समान है।
सुख चाहो तो सुख दो, कि यही पुण्य-दान है॥
इन्सानियत में आओ, छोड़ निंद्य कर्म को।
अब और कलंकित न करो विश्वधर्म को॥'

फिर क्या था ठनी हिंसा अहिंसा की लड़ाई।
हिंसा पै फतह किन्तु दया-धर्म ने पाई॥
या कहिए हुई विश्व की हत्या से रिहाई।
फिरने लगी हर ओर अहिंसा की दुहाई॥

अज्ञान अनाचार का डेरा उखड़ गया।
झण्डा उसी जगह पै अहिंसा का गढ़ गया॥
यों वीर ने सन्देश दे जग को जगा दिया।
या कहिए मठाधीशों को था तिलमिला दिया॥
सुख चैन का दुनियाँ मे समुन्दर बहा दिया।
गोया नरक में स्वर्ग का आनन्द ला दिया॥
आनन्द मे तब्दील हुआ विश्व का क्रन्दन।
यह गूँजा कि-'जयवन्त होवे वीर का शासन॥'

यह तय है कि इन्सान की शाने बुलन्द की।
मनहूसियत मिटादी कि जड़ थी जो द्वन्द की॥
उपकार यह किया है कि .खूँरेजी बन्द की।
जय आज भी क़ायम है यों सिद्धार्थ-नन्द की॥
सम्वाद आज की घड़ी यह है सुना रही।
'अब राष्ट्र-धर्म होने अहिंसा है जा रही॥'

जनक-नन्दिनी

[एक]

प्रथम झुका कर महावीर के चरणों मे अपना माथा।
बीते युग की एक सामने रखता हूँ गौरव-गाथा॥
मिले गले-से-गले राम, लव-कुश को छाती मे भरकर।
चले मुदित लक्ष्मण भी रणसे, तजकर सभी बाण बख्तर॥
बदल गई रण-भूमि हर्ष मे, ऐसा हुआ विचित्र समर।
शत्रु—शत्रुता छोड़, पुत्र बन, गिरा पिताके चरणों पर॥
सीता हुई प्रफुल्लित मनमे, देख बालकोकी क्रीड़ा।
विस्मृत होने लगी उसे अपने विरही-मनकी पीड़ा॥

इधर चले रघुनाथ साथ ले, अपने विकमाये-उरको।
जनक-नन्दिनी भी विमानमें, लौटी पुण्डरीकपुरको ॥
अवसर पा अनुकूल विभीषण, पवनपूत बोले हँसकर।
'नाथ! दयाकी दृष्टि चाहिये, करनी अब सीताजी पर ॥'
रघुपति बोले—'यदि अपनेको, शुद्ध प्रमाणित कर पाये!
तो मुझको आपत्ति नहीं है, बड़ी ख़ुशीसे घर आये ॥'
मुदित हुए आज्ञा सुनकर सब, आँखोंसे जल बह निकला।
महासतीको लेने पुष्पक, वज्रजङ्घके देश चला ॥

[दो]

आई अवधपुरीमें वापस, अवधेश्वरकी पटरानी।
श्रद्धासे, आदरसे उसकी, जहाँ की गई अगवानी ॥
लगी हुई थी राम-सभा जब, बैठे थे सब दर्बारी।
तभी पधारी दिव्य ज्योति-मण्डित लव कुशकी महतारी ॥
करते हुए प्रवेश भवनमें, सीताने सोचा मनमें—
'अशुभोदयका हुआ अन्त अब, सुख आयेगा जीवनमें ॥'
किन्तु ठिठककर खड़ी रह गई, मनमें जगी विषम-रेखा।
पद्मनाभके विकृत-मुखको, जब उसने सन्मुख देखा ॥
खड़ी सोचती रही वहीं पर, नजर किये नीची अपनी।
'शायद अभी नहीं बीती है, मेरे दुःखोंकी रजनी ॥'
अरे भाग्य! तू कितना निर्दय होकर चक्र चलाता है।
चर्खा भी चुप रहता है, तू मनचाहा कर पाता है ॥
लव-कुश जैसे पुत्र और—लक्ष्मण जैसा जिसका देवर।
सीता जैसी महासती, अपमानोंकी खाये ठोकर! ॥
बोले राम—'ख़ुश नहीं हूँ मैं, देख तुम्हे, मनमें सीते!—
ताजा है अपराध आज भी, हैं यद्यपि वर्षों बीते ॥
मेरे तुम परित्याग किये भी, नहीं छोड़ती हो ममता।
इस बेशर्मीकी बतलाओ—कौन कर सकेगा समता? ॥

बेक़सूर हो तो साबित कर दो, तुम दुनियाँके आगे।
कठिन-परीक्षा दो जिससे, जनता अपना संशय त्यागे ॥'
सुनती रही खड़ी सीता, फिर बोली गद्गद् वाणीमें।
'कितनी निर्दयता पनपी है, उफ़ ! स-विवेकी प्राणीमें ॥
रघुपति ! कहो उचित था तुमको, क्या मेरा करना बनवास।
इष्ट यही था, तो कर देते, किन्हीं आर्यिकाओंके पास ॥
गर्भवती अबला पर तुमने, किया जुल्म जीवन दाता।
यदि मेरा कुमरण होता तो, कहो तुम्हे क्या मिल जाता?॥
करनीमे कुछ कसर नहीं, तुमने तो रक्खी थी बाकी।
था कुछ पुण्य कि जिसने हरदो, घड़ियाँ मेरी विपता की ॥
बोलो, न्यायाधीश ! परीक्षा, मै किस भाँति प्रदान करूँ।
अग्नि-कुण्डमे कूद पड़ूँ या कालकूट विष-पान करूँ ? ॥'
रहे सोचते राम एक क्षण, इस गम्भीर समस्या पर।
बोले फिर ममता-विहीन हो, दृढ़ताको स्वरमे भरकर ॥
'अग्नि-प्रवेश करो सीते तुम, जिसमे सब अपवाद मिटे।
रहे न छिपकर सत्य, अभय हो-दुनियाँ के आगे प्रकटे ॥'
बोली सीता—'शिरोधार्य है, मुझको सब आदेश वचन।'
लौट चली फिर उलटे पैरो, अभय और आनन्दित मन ॥
किन्तु सभामे दहक उठी वह, धधक रही थी जो ज्वाला।
फौलादी-हृदयोको उसने, पानो-पानी कर डाला ॥
नीर बहाने लगे नयन सब, हृदय कर उठे हाहाकार।
क्यो, समर्थ-पुरुषोंके आगे, हो निबलों पर अत्याचार॥
लक्ष्मण, लव-कुश, आंजनेय नृप और सभासद पुरवासी।
व्याकुल हुए, उदासीकी, चहरो पर चढ़ी कालिमा-सी ॥
नारदजी यह लगे सोचने, यद्यपि सीता निर्मल है।
किन्तु आगका क्या यक़ीन, जो रखती हैवानी-बल है ॥

रोकर नगर निवासी बोले—'रघुवर ! करिये रोष नहीं।
माँ पवित्र है क्षमा कीजिए, उसमे कोई दोष नहीं ॥'
कहने लगे राम—'क्यों दिलसे आज दया पड़ती उमड़ी ?
उस दिन दया भूल बैठे थे, जब उसको दुनियाँ उजड़ी ॥
कहते थे—'रावण के घर रह आई है हदसे ज्यादा।
घरमे रखना उचित नहीं, टूटेगी इससे मर्यादा ॥'
'आज उसे निर्दोष बताकर, क्षमा-याचना करते हो ? ।
आहत कर खुद ही क्यों बैठे, गहरी साँसें भरते हो ? ॥'
रहे मौन सब हृदय, बोलनेमे थे सभी कण्ठ असमर्थ।
न्यायाधीश रामने बतला दिया, न्यायका सच्चा अर्थ ॥

[तीन]

धधक उठी वह आग कि, जिसकी लपटें छूती है आकाश।
फूटा ज्वालामुखी कि जिसने लिखा शील-व्रतका इतिहास ॥
वर्गाकार डेढ़ सौ गजकी वन्हि-वापिकाके भीतर।
आ बैठा जैसे विनाश था, घोर भयकरता लेकर ॥
ज्वलन-शील सूखा ईंधन, जलता था जैसे दुखिया मन।
पास नहीं आने देता था तीव्र ग्रीष्मका उत्पीडन ॥
काँप गया दर्शक-दल, पावककी जब निष्ठुरता देखी।
ऐसी थी वह आग जलादे, अहंकारियोंकी शेखी ॥
थे असंख्य दर्शक समुपस्थित, और अनेको बड़े नरेश।
आये थे जो अवधेश्वरका, पाकर आग्रहमय आदेश ॥
सभी खड़े थे अग्नि-कुण्ड पर, ले कौतुककी इच्छाको।
तभी पधारीं जनक-नन्दिनी, देने अग्नि-परीक्षाको ॥
ओह ! अमङ्गलके भयने तब, कँपा दिये सब मानव-मन।
कहाँ प्रलयके जैसी ज्वाला, कहाँ फूल-सा कोमल-तन ? ॥

देख रहे थे, राम प्रियाके, पावन तन-मनकी दृढ़ता।
देख रहे थे लव-कुश अपनी, प्यारी माँकी परवशता॥
देख रहे थे खड़े महीपति, न्याय, न्यायका सीमा-धाम।
देख रहे थे पुरवासी सब, अपनी शठताका परिणाम॥
कर स्मरण हृदयमे प्रभुका, महासती बोली सविनय—
सुनने लगे उपस्थित जन सब, कौतुकमय होकर तन्मय॥
'तन, मन और वचनसे मेरा, यदि सतीत्व कुछ टूटा हो।
सपनेमे भी एक मिनटका, यदि पातिव्रत छूटा हो॥
चाहा हो पर नर यदि मैंने, छोड महा-सतियोकी रस्म।
तो हे ज्वाले! तरस न लाना, कर देना तुम मुझको भस्म॥
अगर सतीत्व शुद्ध हो मेरा, तो न जलाना मेरी काय।
तेरे हाथो सौंप रही हूँ, मै अपनी क़िस्मतका न्याय॥'
मंत्र-मुग्ध-सी सुनती थी जब, जनता सारी खडी-खड़ी।
उसी समय निर्भय-चित सीता, अग्नि-कुण्डमे कूद पड़ी॥
अचरज लगी देखने जनता, जो नयनाके पथ आया।
शुद्ध शील व्रतने जो अपना, बल प्रत्यक्ष कर दिखलाया॥
'यह क्या?' दर्शक चकित रह गये, मूक हुइ उनकी वाणी।
अग्नि न जाने कहाँ गई, भर गया वापिकामे पानी॥
स्वच्छ-सलिलमे कमल खिल रहे, और उठ रही है लहरें।
खीच रही शोभा मनको, मन कहता—'सदा यहीं ठहरें॥'
शतदल कमल, कमलके ऊपर स्वर्ण-रत्नमय सिंहासन।
महासती उसपर विराजती, दिव्य-ज्योति मंडित आनन॥
बरस रहे है फूल गगनसे, सुन पड़ता है 'जय-जय' नाद।
नरक क्षेत्रमे उतर पड़ा हो, जैसे स्वर्गोका आल्हाद॥
थे सब मुदित, चकित इतनेमे, आई एक परेशानी।
मर्यादासे बाहर आने लगा, वापिकाका पानी॥

मुखों तक, घुटनों तक सहसा, पानी छाती तक आया।
चोटी तक आया तब उससे, जन-दल बेहद घबडाया॥
त्राहि-त्राहि मच उठी बालकोंको, बैठाला कन्धों पर।
लगे पुकार मचाने—'माँ अब, करो दयासे भरी नजर॥
महासती हो क्षमा करो, कर कृपा कसूरोंको भूलो।
अभिलाषा है मनमें, युग-युग तक तुम सदा फलो-फूलो॥'
रुका उमड़ना पहले तो फिर, घटा उसी क्रमसे पानी।
सभी उपस्थित जनके मुँह पर, आई धन्य-धन्य वाणी॥
ममतामय लव-कुश जा पहुँचे, खड़े हो गये इधर-उधर।
कमल वासिनी लक्ष्मीके जैसा था, कैसा दृश्य-मधुर॥
राम सोचने लगे हृदयमें, लज्जित या मोहित होकर।
'कितनी शुद्ध प्रभा पाई, पावकमें सीता ने तप कर?॥'
तभी राम बोले सीतासे, स्वरमें थी गहरी ममता।
'क्षमा करो; हे प्रिये! परख ली गई तुम्हारी उज्वलता॥
राज-भवनको चलो, छोड दो चर्चा यह कलेशकारी।
शीघ्र सँभालो चल कर अपने, पदकी अब जिम्मेदारी॥'
सीता उठकर खडी हुई, बोली विरक्त होकर वाणी।
'क़ाफी देख चुकी हूँ रघुपति, क़िस्मतकी खींचा-तानी॥
नहीं किसीका दोष, दोष है तो है सिर्फ भाग्यका दोष।
जिसके आगे बलशाली भी, रहता है होकर खामोश॥
अब अपने विकासको आगे, आनेका अवसर दूँगी।
स्त्री-लिंग छेद कर अपनी, दुनियाँ अलग बसाऊँगी॥'
यह कह सीता केश-लोंच कर, चलदी तपोभूमिकी ओर।
धन्य-धन्यकी ध्वनिसे मुखरित, होने लगा गगनका छोर॥
देख प्रियाको जाते, उसके पड़े देख धरती पर केश।
विह्वल हुए राम मनमें, उठ खड़ा हुआ था प्रेमावेश॥

चिल्लाये—'सीते, सीते !' गिर पड़े तभी मूर्च्छित होकर।
किन्तु न सीता लौटी उससे, उदय हो चुका था दिनकर॥

साधु-सेवी

कोढ़ फूट निकला था तनमे, गिरता था आमिष गलगल !
इतनी थी दुर्गन्धि कि जिससे, पूरित था सारा जंगल !!
सड़ व्रणो मे से बहता था—रक्त, पसेव, पीव चण-चण !
इन सब के अतिरिक्त और था—दुष्ट मक्खियो का पीड़न !!
उफ़ ! कितनी पीड़ा थी फिर भी थे प्रसन्न-मन योगीश्वर !
सोच रहे थे-'मुझको क्या है, 'मै' हूँ वह हूँ अजर-अमर !!'
धर्म—क्रियाओ मे सतर्क थे, योग-साधना मे तत्पर !
शारीरिक—रोगो पर उनकी, पड़ती फिर किस तरह नजर ?

\+ \+ × ×

जलने वालो की दुनिया मे, कमी नहीं है रही कभी !
कुछ दुष्टो ने महाराज से, कहदी यह दास्तान सभी !!
बोले नृप-'कोढ़ी गुरु है क्या', सेठ सामने हुए जभी !
मन मे भीरु, सशंक वणिकवर, दृढ़ होकर बोले फिर भी !!
'मिथ्या भाषी है वह मानव, जिसने दिया घृणित सम्वाद !
निश्चय बुरी भावना द्वारा, खड़ा किया है नया-विषाद !!
गुरु का तन तो परम दीप्तिमय, जिसमे रही वासना-आग !
भाग्यवान वह हृदय, पनपता सेवा का जिसमे अनुराग !!'
एक सभासद बोल उठा तब, उसी समय अवसर पाकर !—
'सत्य-झूठ का निर्णय खुद ही, कर न लीजिएगा जाकर !!'
बोले-'ठीक, स्वयं ही कल हम, सत्य-झूठ को परखेंगे !
झूठ बोलने वाले की हिम्मत कितनी है ?—देखेंगे !!"

धन-कुबेर तब मौन, सोच मे डूबे, अपने घर आए !
एक मानसिक व्यथा, एक चिन्ता का बोझ साथ लाए !!
लगे खोजने बैठ सदन मे, विकट-समस्याओं का हल !—
भूख-प्यास भूले बैठे हैं, हृदय हो रहा है चंचल !!—
'सौ-सौ टुकड़े हो सकते हो, तो वह बेशक हो जाएँ !
'गुरु कोढ़ी हैं!' निद्य-शब्द यह कैसे जिह्वा पर आएँ ?
मुनि-निन्दा के महापाप को, किस प्रकार मै अपनालूँ !
जिनकी स्तुति करता आया, क्या उनकी निन्दा कर डालूँ ?
गुरु का तन नीरोग नहीं है, देखेगा नृप-गर्वीला !
निश्चय ही तब हो जाएगा, उसका बदन लाल पीला !!
मुझे न अपने प्राणो का भय, चाहे जब उनको ले ले !
फिक्र मुझे है, मेरे कारण मुनि-तन कष्ट नही झेले !!
मुनि-निन्दा के भय से मैने, किया असत्य-वचन व्यवहार !
लेकिन अब मुनि-संकट का लगता है मुझको पाप-अपार !!'
घबराई 'मुनि—भक्ति'—सेठ की, भागा वह असहाय वहाँ !
दुखिया, दुख को भूल, शान्तिमय पाते है सन्तोष जहाँ !!
अस्ताचल की ओर जा रहा था उदास-मुख मे दिनकर !
हल-वाहक भी लौट रहे थे, ले-लेकर हल अपने घर !!
सेठ चला—विह्वल सा, घबराया-सा योगीश्वर के पास !
बोला, सविनय भक्ति पूर्ण, लेकर ठंडी-सी एक उसास !!
गुरु ने पहले ही सोचा—'क्यो आज सेठजी इतने वक्त—
आए है', अवश्य है कारण, रह न सकेगा जो अव्यक्त !!'
'योगीश्वर ! मै सन्ध्या को, इसलिये आज फिर आया हूँ !
एक धर्म-संकट का मै संबाद साथ मे लाया हूँ !!
कल नरेश दर्शन का मिस ले, आएँगे करने अपमान !
अविनय होने के पहले ही, अतः कीजिए प्रभु ! प्रस्थान !!'

बोले वादिराज-गुरु-'आखिर यह सब क्या है, समझाओ!
जो कुछ हुआ उसे थिरता से, धीरे-धीरे कह जाओ!!'

× × × ×

सुनकर बोले मुनि नायक तब,-'भक्त! न इतना घबराओ!
होने दो प्रभात, तुम निर्भय होकर अपने घर जाओ!!'
सेठ निरुत्तर, खड़े रहे, जैसे लकवे ने हों मारे!
बरस पड़े हों आसमान से या मस्तक पर अँगारे!!
योगिराज मुसका कर बोले-'चिन्ताओं को ठुकराओ!
प्रभु का लेते हुए नाम तुम, हर्षित हो वापस जाओ!!'
लौटे सेठ अभय होकर पर, थी मनमे फिर भी हलचल!—
'मुझे अभय कर देने से ही, क्या बाधा जाएगी टल?
अभय-दान जब योगीश्वर के श्रीमुख से मैंने पाया!
फिर क्या शंका? अटल-गिरा जब, गिर-सी साथ-साथ लाया!!'

× × × ×

जैसे-तैसे रात बिता कर, राज-भवन की ओर चले!
फिर नरेश के साथ तपोनिधि के दर्शन करने निकले!!
सेठ देख कर दंग रह गए, मुनिवर की निरोग-काया!
अचरज!—यह क्या इन्द्रजाल ने फैलादी अपनी माया??
सोने सा अतिदीप्त, रोग से शून्य, तपोबल से जगमग!
गुरु का देख शरीर, सेठ रह गए खड़े कुछ दूर अलग!!
सत्ताधीश क्रोध मे डूबे, सोच उठे अपने भीतर—!
'मुझसे भी जो झूठ बोलता, है वह कितना घातक नर?
मृत्यु दण्ड दूँगा मै उसको, है बेशक संगीन-कुसूर!
साधु-अवज्ञा कर, करडाली उसने मानवता चकचूर!!'
भावो की भाषा पढ़ कर गुरु, कहने लगे दयार्द्र-वचन!—
'क्रोध कालिमा के द्वारा क्यो, करते अपना मैलापन?

कहने वाले ने पृथ्वीपति ! कुछ भी मिथ्या कहा नहीं !
लेकिन यह ज़रूर है तन में, रोग आज है रहा नहीं !
देखो यह उँगली मे जैसा कोढ़ अभी भी है सुस्थित !
इसी तरह का सब शरीर था, गलित, घृणित या दुर्गन्धित !!
मुनिनिन्दा से मलिन न हो जाए उनका पवित्र-जीवन !
साधु-सुभक्त वणिक ने इस ही लिए किया मिथ्या-भाषण !!
मुझे नहीं तन की चिन्ता थी, रहे रोग अथवा जाए ?
थी इसकी चिन्ता कि धर्म का नाम कहीं न डूब जाए !!"
बोले—नृप और बणिक साथ ही—'कैसे प्रभुवर रोग गया ?
राज-रोग से मुक्त हुए, किस तरह मिला यह स्वास्थ्य नया ??'
साधु-शिरोमणि बोले—'प्रभु की अटल-भक्ति को क्या मुश्किल ?
लेकिन इतना है कि चाहिए, आत्मशक्ति इसके क़ाबिल !!
रत्न-राशिमय 'पुर' हो जाता, जिस पुर मे प्रभुवर आते !
'उर' मे आए हुआ स्वर्ण तन, यह सुन क्यो विस्मय लाते ?'
चमत्कार यह देख उपस्थित-जन आनन्द-विभोर हुए !
मुनिनिन्दक भी लज्जित होकर, भक्ति-मार्ग की ओर हुए !!
साधु-भक्त वह सेठ और साधना-मुग्ध पृथ्वी-पालक !
देखा—दोनो मुनि-चरणों मे, झुका रहे अपने मस्तक !!
जय-जयध्वनि से गगन-हृदय को जनता चीरे देती थी !
'भगवत्'—धर्मोत्थान मुदित लख, लोकोत्तम-सुख लेती थी !!

पुजारी !

शास्त्र सुने, मालाएँ फेरीं, प्रतिदिन बना पुजारी !
किन्तु रहा जैसे का तैसा, हुआ न मन अविकारी !!
साठ साल की उम्र हो चली, फिर भी ज्ञान न जागा !
सच तो होगा यह कह देना—'जीवन रहा अभागा !!'

नहा लिया हो गया शुद्ध, आ खडा हुआ प्रभु-पद में !
त्याग सका न वासना मन की, डूबा गहरे मद मे !!
धूप इधर क्षेपण करता, मन, उधर सुलगता जाता !
भाव-शून्य, केवल शरीर-पूजा का पुण्य कमाता !!

कहता फिर—'पूजा है निष्फल ! संकट नही मिटाती !
वही मशक्कत, वही ग़रीबी, सुख न सामने लाती !!
बढ़ा न पैसा भी इतना जो सब पर रौब जमाता !
विद्युत्‌वायु फैन से लेता, या मोटर दौड़ाता !!'

नही सोचता—'यह पूजा क्या ? जिसमे चित चचल है !
बहू-बेटियों पर कुदृष्टि या अन्य कोई हलचल है !!'
पूजा जिसको कहते हैं, जिसको हम भक्त-पुजारी !
उसकी पुण्य-कथा सुन लो, शिक्षाप्रद, कल्मषहारी !!

भक्त लीन था प्रभु-पूजा मे, निज विकारता खोकर !
घर से एक ख़बर आती है दुखकर और भयंकर !!—
'नौजवान इकलौता बेटा, अभी साँप ने काटा !
चल जल्दी घर, तोड़ दिया है आहो ने सन्नाटा !!!'

सुनता है, सुनकर कहता है—'मै ही क्या कर लूँगा !
पूजा छोड़ भगूँ, आखिर जीवन तो डाल न दूँगा ?'
सुनकर, स्त्री मन्दिर मे रोती-रोती आती है !
कहती है कठोर हो,—'क्या पूजा अब भी भाती है ?

अरे, छोड़ चल दो, पूजा को फिर भी समय मिलेगा !
चला गया बच्चा तो दुख, दिल से न कभी निकलेगा !!
ऐसी भी क्या पूजा जो बच्चे का रहम भुलाती ?
जल्दी चलो, खौफ से मेरी, धड़क रही है छाती !!

हाय ! अचेत पड़ा है बे-सुध, तन में भरा ज़हर है !
मुँह से झाग दे रहा है, पल-पल प्राणों का डर है !!

सब तुमको धिक्कार रहे, कहते हैं—'कैसा नर है ?
निरमोही के सीने मे, दिल है अथवा पत्थर है ?'

बोला—'जाकर जो उपाय समझो वह करो, कराओ !
मेरी पूजा मे न प्रियतमे ! बाधा तुम पहुँचाओ !!
पूजा को तुम व्यर्थ समझकर ही ऐसा कहती हो।
लेकिन यह सच्चा उपाय है, पर, तुम भूल रही हो !!

प्रभु से अधिक कौन है विषहर, कौन अधिक उपकारी ?
जिसकी चरण-शरण में जाऊँ, बनकर दीन भिखारी !'
इन चरणों की सेवा से जो फल दुनिया पाती है !
वैसी वस्तु, मिसाल देखने मे न कहीं आती है !!

प्रभु-पूजा मेरा उपाय है, जो सङ्कट-मोचक है !
अब तो दुख के सबब और भी यह सब आवश्यक है !!'
नारी चली, क्रोध मे डूबी, रोती और बिलखती !
विवश, हताश, सर्द-साँसों पर, जीवन कायम रखती !!

भक्त लगा पूजा मे, प्रभु-छवि मे अपने को खोने !
सोचा नहीं—'हुआ क्या ? आगे क्या जाता है होने ?'
इतने मे बच्चे को लेकर, गृहणी फिर आ धमकी !
भीड़ साथ मे थी, रोने सब लेकर स्वरत गम की !!

वेदी के समीप बच्चे को, नाखुश होकर डाला !
कहने लगी—'बचालो इसको, पूजा करके लाला !!
पूजा महामंत्र है वह ही, इसका जहर हरेगी !
अब न बचा पाई तो सचमुच, बनी बात बिगड़ेगी !!'

नहीं भक्त ने उत्तर मे भूले भी शब्द निकाला !
प्रभु की नजरो मे अपनी आँखों को बेशक डाला !!
उसी लगन से पूजा में वह हुआ दृढ़व्रती तन्मय !
फिर जय हो जाने में क्या हो भी सकता था संशय ?

मुर्झाये मन मुदित हुए मुख खिची हर्ष की रेखा !
जब निर्बिष होते बालक को सबने सन्मुख देखा !!
उठा, कुमार नींद से सोकर ही जैसे जागा हो !
जीवन की दुन्दुभी श्रवण कर, महाकाल भागा हो !!
धन्य, धन्य जय के नारो से, सब ने गगन गुँजाया !
लोगो ने अचरज, माता ने अपना बच्चा पाया !!
कहने लगे—धन्य यह पूजा, और अनन्य पुजारी !
श्रद्धा और भक्ति-मय पूजा, है अतीव सुखकारी !!'
'भगवत्' पूजा की महानता, कहले, किसका बश है ?
किसमे इतनी ताक़त है, किसमे इतना साहस है ?

आगामी प्रकाशन

श्री 'भगवत' जैन की लेखनी द्वारा चौथा हाहाकारी-नाटक

ग़रीब

[देश-दशा-प्रदर्शक, करुण-रस प्रधान क्रान्तिकारी नाटक]

ग़रीब

गरीब का एक एक शब्द आपके हृदय में हथौड़े की तरह ठोकर मारेगा। आँसू बहाने के लिए मजबूर करेगा, और खुली हुई आँखों में रोशनी डाल कर कहेगा—क्या गरीबो के लिए दुनिया मे जगह नहीं है ? क्या ग़रीबों के पुत्र कुँवारे ही मौत की गोद मे सोएँगे ? क्या गरीबों मे मनुष्यता नहीं होती ? क्या पैसे वालो के लिए ही दुनिया के सारे सुख, सारी समृद्धि बता दी गई है? नहीं, गरीबो के लिए भी जीना ज़रूरी है, क्योकि वे मनुष्य है।'

अत्यन्त रोचक शिक्षा-पूर्ण आज की समस्या पर लिखा गया यह पुरजोश ड्रामा स्टेज पर धाक बाँध देगा। प्रतीक्षा कीजिए।

—मैनेजर भगवत भवन।